International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 399-401

'चेतना के रंग में' में आम-आदमी की अभिव्यक्ति

दीपक
15/333, भगत सिंह कालोनी, बरनाला रोड, सिरसा, भारत।

प्रस्तावना

राजनीतिक स्तरों पर होने वाले बदलावों के कारण आम आदमी बेहद प्रभावित होता रहा है। स्वतन्त्रता के बाद जिस राजनीतिक तस्वीर की कल्पना की गई थी वह मात्र ढकोसला और आश्वासनों की ही पुलिंदा बन कर रह गई। फलस्वरूप आज समस्त राष्ट्र लालफीताशाही और हिटलरशाही और सत्ताशाही की जंजीरों में जकड़ा है। समस्त नेताओं की स्वार्थ वृत्ति ने भाई-भतीजावाद, दमन, आंतक, चाटुकारी संस्कृति एवं विकृत संसद प्रणाली को ही पुष्ट किया है। इसी कारण स्वतन्त्रता के बाद भी विश्व के सबसे बड़े प्रजातंत्रात्मक देश का आम आदमी निरन्तर संघर्ष कर रहा है। ''नेताओं के खोखले वायदे और उनके देश के उत्थान हेतु दिए गए वक्तव्य आम आदमी के लिए निरर्थक शोरगुल से महत्वपूर्ण नहीं है।''[१] वस्तुतः स्वतन्त्रता के बाद भी आम आदमी परतन्त्र है। कभी परिवार वालों के हाथों तो कभी शासकों के हाथों। देश सूखा, बाढ़, अकाल की चपेट में आता रहा है और आम आदमी का जीवन और अधिक विषम एवं कुण्ठित बना है। यह युगीन सत्य है कि पूँतिपतियों के पाँव निम्न वर्ग की गर्दन पर हैं और यह वर्ग विवशता के कारण उनकों सहलाता है। वास्तव में ऐसा करना ही उसके जीवन की सार्थकता को भली-भाँति दर्शाता है। यदि वह अन्याय का विरोध करता है तो वह अपने परिवार की रोटी से भी वंचित हो जाएगा।

''सत्ता में लिप्त शासकों की उदासीनता के मध्य लाख प्रयत्न करके भी कैदी-सा वह अपनी नितान्त आवश्यक वस्तुंओं से भी वंचित है। उसकी हताश आँखें बेजारी से उस भारत को ढूंढती हैं जिसमें जीवनयापन के उसने उजले स्वप्न बुने थे।''[२] सच तो यह है कि यहां केवल भाषण-प्रचार और नारेबाजी द्वारा भविष्य के लिए आश्वासन दिया जाता है। खास आदमी सदैव ही चतुराई के बल पर सुख साधन बटोरता है। शोषण का शिकार होता है सिर्फ आम आदमी। आम आदमी के चेहरे पर मोहभंग को आसानी से पढ़ा जा सकता है। स्वतन्त्रता के ५० वर्ष आम आदमी को प्रेतवासी भयावहता का स्मरण कराते हैं, जहाँ शोषण के नीचे वह कतरा-कतरा मर रहा है, उसकी आँखें तो आजाद हैं हर चीज, हर घटना को देखने के लिए लेकिन उसकी जुबान पर भय और अत्याचार के ताले लगे हैं जिस कारण वह हर स्थिति को झेलने के लिए विवश है। आम आदमी भली-भाँति जानता है कि स्वतन्त्रता उसके लिए तो मात्र एक छलावा है जो उसके जीवन में कभी नहीं आएगा। राजनीतिक ने आम आदमी के व्यक्तित्व को नष्ट-भ्रष्ट करके रख दिया है।

कृष्ण लता यादव एक सचेत साहित्यकार हुई हैं। अतः इनके साहित्य में समाज की विभिन्न विसंगतियों को कथ्य का आधार बनाया गया है। मैक वेबर एण्ड पेज ने समाज की सटीक परीभाषा देते हुए लिखा है - समाज सम्बन्धों का जाल है। यह अपने आप में रीतियों, कार्यविधियों, अधिकार व आपसी सहायता, अनेक समूहों तथा उनके विभा आदमी ं, मानव व्यवहार के नियन्त्रणों तथा स्वतन्त्रताओं की व्यवस्था है' उधर कुमार साहब नाव में खर्राटे भर रहें हैं। जल बयार और भी उनकी नींद को पोख्ता कर रही है। आखिर वे इस खाली समय में करते भी क्या ? न कुछ पढ़ सकते थे और न इन लोगों के बीच कोई बातचीत होती, बस वही घिसी-पिटी वैष्णव और साकट वाली बहस। अच्छा है कि रातभर के जागरण को वे अभी पूरा कर रहे हैं। नाव समय पर घाट लगेगी ही। कहने वाले यूँ कह रहें हैं कि कुमार साहब राजा रईस, इन्हें दिन-रात सोना और खाना है। लेकिन इसके बावजूद और कुछ है जिसका सबों को पता नहीं रहता। हरेक आदमी का अपना घेरा होता है, उसकी धरती और उसका आकाश जिसके बीच वह अपनी सुविधा तथा गति से जीता रहता है फिर कुमार साहब के बारे में पूछना ही क्या ? वे अपनी विशिष्टता के साथ विशिष्ट गति में चलते रहें हैं। उनके विरूद्ध कुछ भी कहना, कहने वालों की नासमझी है।[३]

यह व्यवस्था निरन्तर परिवर्तित होती रहती है। इसके अन्तर्गत मानवीय सम्बन्धों की पूर्ण जटिलता निहित है, चाहे वे सम्बन्ध साध्य साधन, स्वाभाविक, प्रतीकात्मक अथवा क्रियाओं से उत्पन्न हो। कोई भी व्यक्ति समाज से अलग नहीं है। घने बीहड़ों में निवास करने वाले साधु-संन्यासी भी समाज के दायरे में ही आते हैं।[४] नाथों, सिद्धों और अन्याय ऐसे विरागी साधुओं ने समाज से एक निश्चित दूरी रखी, परन्तु वे फिर भी किसी न किसी रूप में समाज से सम्बन्ध रहे और समाज भी उनसे प्रेरणाएं पाता रहा है। लेखिका स्वयं भी समाज का अभिन्न अंग है और उसके अधिकांश विषय भी समाज से जुड़े होते हैं। एक उदाहरण देखिए- 'तब शर्मा जी ने उनसे खुलासा करते हुए कहा, ''उन्हें कोई तड़क-भड़क वाला घर नहीं चाहिए, बस, बैठने और सोने के लिए एक कमरा, रसोईघर, शौचालय तथा नहाने-धोने वास्ते एक चापा कल। डेरा फूस-टट्टी का ही क्यों न हो, हरज नहीं।'' ''तो क्या उन्हें मेरी कुटिया पसन्द आएगी ? अगर पसन्द है तो वे यहाँ आ जाएँ। मैं स्कूल में अपना डेरा ले जाऊँगा।'' इस पर शर्मा जी ने खुश होते हुए उनसे पुछा, ''इसके लिए कितना किराया देना होगा मास्टर साहब!'' शर्मा जी की इस बात पर थोड़ी देर चुप होते हुए ठठाकर हँस पड़े, ''किराया! अरे, किराया तो बहुत है भाई, आपके एस ओ साहब उतना दे सकेंगे ? मेरी कुटिया आगरा के ताजमहल से भी अधिक महँगी है। अब बताइए ?'' अमीन साहब ने झट बात को चपोतते हुए उनसे सविनय कहा, ''आपकी कृपा ही सर्वोपरि है मास्टर साहब! यही बहुत कि आपने अपने यहाँ रहने की स्वीकृति दे दी।'' शर्माजी ने

फिर कहा, ''भाड़ा-किराया किसी दूसरे के यहाँ चलता है। मेरे यहाँ प्रेम और श्रद्धा का व्यापार है। अगर आपके हाकिम इस व्यापार में शरीक हो सकें तो उनका स्वागत है।'' अमीन साहब ने पूरी तरह शर्मा जी की ऊँचाई की पैमाइश कर ली। मास्टर जी ने भी उनके आकार को आँक लिया।[५]

विशेषकार आधुनिक लघुकथा संग्रह सामाजिक अनुभूतियों के रंगो से खूब रंगा हुआ है। सामाजिक जड़ताओं और कुसंस्कारों के विरूद्ध वैज्ञानिक सोच से जुड़कर जीवन की चिंताओं के व्यापक अहसास प्रकट हुए हैं। समसामयिक लेखन में भी समाज में रह रहे आदमी के संघर्ष, उसके दुःख-दर्द और उसकी सामाजिक स्थिति का सजीव चित्रण मिलता है, परन्तु इससे भी बड़ी बात यह है कि आज के साहित्य में मानवीय सम्बन्धों में गिरावट, सामाजिक मूल्यों का अवमूल्यन और सामाजिक विषमताओं की सार्थक अभिव्यक्ति हुई है।[६]

साहित्य- कर्म कथ्य पर केंद्रित होता है। वह समाज का तिरस्कार नहीं कर सकता। समाज की विभिन्न स्थितियों को आधार बनाया जाता है। इनकी रचना धर्मिता में युग और समाज की संवेदना है। समाज में व्याप्त समस्याएँ रचना को व्यापकता प्रदान करती है। युग की परिस्थितियाँ रचनाकार की चेतना को रूपायित भी करती है। कोई भी रचना युग के संदर्भ से अलग रखकर नहीं आंकी जा सकती एवं न ही उसका कोई स्थायी महत्त्व होता है। जैसे-

'व्यक्ति के लिए मात्र जीवनयापन ही समस्या नहीं होती है बल्कि हाशिए पर पड़े समाज को सदर पर उतारकर अपने खाना और दूसरों को खिलाना, अपने जीना और दूसरों को जिलाना भी एक समस्या है। यही मनुष्य की सबसे बड़ी समस्या और सबसे बड़ा काम है। सुख का अमृतकुंड यहीं छिपा है। यही मनुष्य का यापन है। इससे अच्छा पढ़ाई-लिखाई का कोई दूसरा मुकाम नहीं बनता है। वह अपने गुरूबाबा पंडित सारस्वती नंद जी से इस विषय पर क्या बहस करें? गीता की समक्षता जैसी उसकी पहुँच नहीं कि जब मान चाहे तब उनसे भिड़ जाये। उसे निस्संकोच बिना किसी सवाल के अपने निर्णय पर उतर जाना है।[७]

वर्ग भेद का शिकार

लेखिका कृष्ण लता यादव का रचनाकार के स्तर पर भी और जीवन के स्तर भी हर जगह भागीदार की हैसियत से विद्यमान रहता है। कृष्णलता यंत्रणाओं परिस्थितियों में पाती है- राजनपुर से हरिलपुर कैम्प जाने की घटना देखिए' वह राजनपुर से हरिलपुर कैम्प जाने के कई महीनों के बाद सुरपत सोनमंखी घाट को राम-सलाम करते हुए अपने गाँव लौट गया। अब गाँव में रहना उसका लाजिम हो गया था। उसे कमी ही किस बात की रही ? वह बराबर खबर भेजता रहा था कि भैया घाट छोड़कर अपना गाँव पकड़ लें, नहीं तो उसका पीढ़ा खिसक जाएगा। सुरपत ने अपने छोटे के आदेश का पालन किया और उसने गाँव में अपनी खंती गाड़ दी। अब उसे किसी डाल-पात पकड़ने की चिंता नहीं है। उसके जीवन यापन को समय पर पर्याप्त खर्च भेज ही देता है। उसे केवल अपने टोला में घूम-घूमकर मरड़ी करनी है। जैसे वह पहले अपनी सुरसतिया की पतवार पर हाथ रखे कहानी में कहानी की लड़ियाँ लगाए रखता था...नाव आगे बढ़ती जाती थी वैसे ही के द्वारा उसे गति मिल ही रही है। अब केवल बात का बतंगा, कोसी हो या कमला सबको बना ले गंगा। [८]

लेखिका कृष्ण लता यादव में आम आदमी के अस्तित्व की सार्थकता को प्रतिष्ठित करने की तीव्र आकांक्षा है। उसे सारी वैयक्तिक बेचैनियों के साथ भी सारी विद्रूपताओं का पूरा एहसास है। एक उदाहरण देखिए- 'हरिलपुर कैम्प जाने की घटना देखिए' वह राजनपुर से हरिलपुर कैम्प जाने के कई महीनों के बाद सुरपत सोनमंखी घाट को राम-सलाम करते हुए अपने गाँव लौट गया। अब गाँव में रहना उसका लाजिम हो गया था। उसे कमी ही किस बात की रही ? बराबर खबर भेजता रहा था कि भैया घाट छोड़कर अपना गाँव पकड़ लें, नहीं तो उसका पीढ़ा खिसक जाएगा। सुरपत ने अपने छोटे के आदेश का पालन किया और उसने गाँव में अपनी खंती गाड़ दी। अब उसे किसी डाल-पात पकड़ने की चिंता नहीं है। उसके यापन-झापन को समय पर पर्याप्त खर्च भेज ही देता है। उसे केवल अपने टोला में घूम-घूमकर मरड़ी करनी है। जैसे वह पहले अपनी सुरसतिया की पतवार पर हाथ रखे कहानी में कहानी की लड़ियाँ लगाए रखता था...नाव आगे बढ़ती जाती थी वैसे ही के द्वारा उसे गति मिल ही रही है। अब केवल बात का बतंगा, कोसी हो या कमला सबको बना ले गंगा। [८]

लेखिका कृष्ण लता यादव अपने समकालीन जीवन की समस्त विसंगतियों से जुड़ा हुआ महसूस करती हैं, यह जुड़ाव उसे बहुत त्रासद अनुभवों के बीच ला खड़ा करता है। यही कारण है कि उनका समस्त लेखन आधुनिक जीवन के खालीपन और मानसिक कष्टों से सम्बद्ध दिखाई देता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि लेखिका कृष्ण लता यादव के झूठे और आधुनिक समृद्धियों क्रूरताओं को उनकी संवेदना बहुत तीव्रता से महसूस करती है। उनके मनः मस्तिष्क में जो स्वतंत्रतय-बोध है। वह अपने खिलाफ खड़ी हुई सारी स्थितियों से लड़ाई की तथा उतेजना की मुद्रा में, उनके लेखन में मूर्त होता है।

'व्यक्ति के लिए मात्र जीवनयापन ही समस्या नहीं होती है बल्कि हाशिए पर पड़े समाज को सदर पर उतारकर अपने खाना और दूसरों को खिलाना, अपने जीना और दूसरों को जिलाना भी एक समस्या है। यही मनुष्य की सबसे बड़ी समस्या और सबसे बड़ा काम है। सुख का अमृतकुंड यहीं छिपा है। यही मनुष्य का यापन है। इससे अच्छा पढ़ाई-लिखाई का कोई दूसरा मुकाम नहीं बनता है। वह अपने गुरूबाबा पंडित सारस्वती नंदजी से इस विषय पर क्या बहस करें? गीता की समक्षता जैसी उसकी पहुँच नहीं कि जब मान चाहे तब उनसे भिड़ जाये। उसे निस्संकोच बिना किसी सवाल के अपने निर्णय पर उतर जाना है। [१०]

निष्कर्ष

लेखिका कृष्ण लता यादव जमीन से जुड़े साहित्यकार रह हैं। अतः उनकी आस्था-अनास्था व्यवस्था पर केंन्द्रित है। लेखिका की अनास्था विद्रोह मुखोंटों और झूठे प्रदर्शन के प्रति है क्योंकि असलियत में उन आवरणों की तह के नीचे एक निहायत पस्त, कायर, परोपजीवी दुखी और निराश व्यक्ति होता है। उनका स्वतंत्रता बोध उसे आलोक मंजूषा को खूब पहचानता है। सूखते पेड़ और बौखलाती नदियां है, चुपके से अनायास अर्थतंत्र के दबाव में छिन जाते स्नेह के टुकड़े भी है।'फोन की ट्रिन-ट्रिन सुनकर रजत ने रिसीवर उठाया। हाय-हैलो की औपचारिकता के बाद उधर से पूछा गया - "मां

कैसी हैं ? अब तो बहुत बूढ़ी हो चली होंगी ? हमारा जिक्र करती रहती होंगी ?"
समुद्र पार से कहे गये ये शब्द सुहावने थे - दूर के ढोल की तरह। इन शब्दों से भली-भांति परिचित था, रजत। पिछले सात-आठ साल से इसी तरह की शब्दावली सुनता आ रहा था वह।

संदर्भ

1. धुमिल, संसद से सड़क तक, पटकथा से उद्धृत
2. देवीप्रसाद त्रिपाठी (सम्पादक) वर्तमान साहित्य, पृ० १५, अंक
3. कृश्ण लता यादव 'चेतना के रंग मेंा में' पृष्ठ ८६
4. आर.एम. मैकलेवर एण्ड सी.एच.पेज, सोसायटी पृ० २३८
5. कृश्ण लता यादव 'चेतना के रंग मेंा में' पृष्ठ १७१
6. आलोचना : जनवरी १६६८ पृ० ५२
7. कृश्ण लता यादव 'चेतना के रंग मेंा में' पृष्ठ २१२
8. कृश्ण लता यादव 'चेतना के रंग मेंा में' पृष्ठ १८४
9. कृश्ण लता यादव 'चेतना के रंग मेंा में' पृष्ठ १८४
10. कृश्ण लता यादव 'चेतना के रंग मेंा में' पृष्ठ २१२